शिक्षकों की कलम से

हमारा प्रयास है कि इस कॉलम के माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। कुछ अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए। साथ ही, गुज़ारिश है कि आप अपने अनुभवों को भी ज़रूर साझा करें।

1. शंकर जी का पसीना और जंगल का बनना . अनुराधा जैन
2. कामकाजी बच्चे, स्कूल और बहुबचपन . अंजना त्रिवेदी
3. गणित-वणित . कामाक्षी चौहान

कामकाजी बच्चे, स्कूल और बहुबचपन

अंजना त्रिवेदी

कामकाजी बच्चों के जीवन की परतों को खोलें तो उनमें बच्चों का दर्द, कठिनाई, उनके सपने और चिन्ताएँ साफ दिखाई देते हैं। भोपाल में ही हज़ारों की संख्या में ऐसे बच्चे हैं जो श्रम और पढ़ाई के बीच झूल रहे हैं।

इन बच्चों का जीवन कई परतों में चल रहा होता है। एक तरफ घर में पढ़ाई का कोई माहौल नहीं है। पढ़ाई की बुनियादी ज़रूरतें भी पूरी नहीं हो पा रही हैं। दूसरी तरफ स्कूल के अन्दर न कोई सम्मान और वातावरण सेना के अनुशासन-सा सख्त एवं मनोबल को तोड़ने वाला है। भागते-दौड़ते काम की जगह पर जाते हैं तो मालिक फटकार लगाता है कि काम पर इतनी देर से आया है, बड़ा अफसर बन रहा है। अगर स्कूल में देर हुई तो शिक्षक डाँटते हैं। बच्चे के साथ न तो समाज में न्यायोचित व्यवहार होता है, और न स्कूल में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिल पाती है जिसके लिए वह इतनी मशक्कत कर रहे हैं।

श्रम के साथ पढ़ाई करने वाले बच्चे

1. मंगला की उम्र 8 साल है, वह गोंड आदिवासी है। दो साल पहले अपने परिवार के साथ रायपुर (छत्तीसगढ़) के पास एक गाँव में रहती थी। वहाँ एक बिजली परियोजना के आ जाने से, इन्हें वहाँ से विस्थापित होना पड़ा। अब दो साल से वह भोपाल के श्यामनगर में रहती है। पास के ही सरकारी स्कूल में वह पढ़ने जाती है। सुबह 5 बजे जब इस उम्र के बच्चे सो रहे होते हैं, मंगला दस नम्बर मार्किट में कचरा बीनने जाती है। उसने भोपाल में आकर ही यह काम किया है। मंगला दुखी होकर कहती है, "पहले ये काम अच्छा नहीं लगता था पर अब ठीक है।" 10 नम्बर से थैले में कबाड़ और रद्दी भरकर 12 नम्बर बेचकर आठ बजे घर आती है। पानी भरती है और माँ के साथ दो जगह बर्तन माँजने चली जाती है। मंगला ग्यारह बजे स्कूल आ जाती है। उसे स्कूल में पढ़ना अच्छा लगता है। मंगला हँसकर कहती है, "अभी मुझे अच्छे से पढ़ना नहीं आता।"

"क्यों नहीं आया अभी तक?"

इस प्रश्न का उत्तर भोलेपन से देते हुए कहती है, "जब हम भोपाल आए तो खोली ही नहीं मिली, तो कभी माता मन्दिर के पास तो कभी सूखीसेवनिया में रहने लगे। ऐसे में पहले जो पढ़ना आता भी था तो वो भूल गई। स्कूल में किताबें दो दिन पहले ही मिली हैं। अब पढ़ रही हूँ। मेडम भी पढ़ना सिखा रही हैं। शाम को स्कूल से जाने के बाद घर का काम करती हूँ और हनुमान मन्दिर भीख माँगने चली जाती हूँ जिससे रात के खाने की दिक्कत नहीं आती है।" वह बतलाती है कि बड़ी होकर बड़ा आदमी बनना चाहती हूँ।

"यह सब काम मैं मेडम से छुपकर करती हूँ। मेडम को पता लगता है तो डाँटती हैं। वह कहती हैं कि तुम केवल पढ़ो।"

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने का फर्ज़ तो निभाएँ स्कूल

हम बच्चों की कमियों पर तो बहुत ध्यान देते हैं पर क्या उस पढ़ाई की गुणवत्ता की चिन्ता करते हैं जिसे कामकाजी बच्चे इतनी कठिनाई से पाने की कोशिश करते हैं? क्या पढ़ाई उनकी कोशिशों का सम्मान कर पाती है? आइए, एक कक्षा का उदाहरण देखते हैं।

सामाजिक विज्ञान कक्षा-7वीं की एक कक्षा का अवलोकन करने का मौका मिला। बच्चे पाठ-4 *हमारा संविधान* पढ़ रहे हैं। बच्चे बारी-बारी से पाठ के एक-दो पैराग्राफ पढ़ते जा रहे हैं और शिक्षक केवल सुन रहे हैं। शिक्षक बीच-बीच में कुछ प्रश्न पूछ लेते हैं, जैसे "ये संविधान कहाँ का है?", "हम कहाँ का संविधान पढ़ रहे हैं?" सब बच्चे मिलकर कहते, "भारत का संविधान।" ऐसे ही बच्चे पढ़ते जा रहे थे और शिक्षक यह जानने के लिए इधर-उधर नज़र दौड़ाते कि कौन-सा बच्चा किताब के बाहर देख रहा है। जैसे ही कोई दिखता, वह उसे टोककर कहते, "किताब में ध्यान दो।" सब बच्चों की गर्दन नीचे है।

कक्षा में तकरीबन 30 बच्चे हैं। 10 बालिकाएँ और बाकी बालक। किताबों की हालत फरवरी माह आते-आते जर्जर हो चुकी है। शिक्षक ने बताया कि इस समय दुहराव (रिवीज़न) चल रहा है। पाठ पढ़ते हुए एक बच्चे ने शिक्षक से सवाल किया, "सर जी, पन्थनिरपेक्ष का मतलब क्या है?" शिक्षक ने कहा, "इसे धर्मनिरपेक्ष भी कहते हैं।" बच्चे ने फिर सवाल किया, "धर्मनिरपेक्ष यानी कि क्या?" "जो धर्म के प्रति निरपेक्ष हो," शिक्षक ने कहा। बच्चे ने बहुत ही दबे स्वर में पूछा, "निरपेक्ष यानी क्या?" शिक्षक बच्चे की बात को सुना-अनसुना करते हुए आगे पढ़ने लगे। बच्चे के चेहरे पर असन्तोष का भाव है। दूसरा बच्चा पाठ को आगे पढ़ने लगा। और ऐसे संविधान का पाठ समाप्त हो गया।

पता नहीं, शिक्षक सवाल को ही डीकोड नहीं कर पाए, या बच्चों के सवालों को सन्तुष्ट किए बिना शिक्षक आगे क्यों बढ़ गए? यह कैसा रिवीज़न है जहाँ बच्चा मूलभूत शब्दों को लेकर ही सवाल कर रहा है?

कक्षा समाप्त होने के बाद मैंने शिक्षक से पूछा, "सोशल सांइस को पढ़ाने के लिए आप और क्या पद्धतियाँ अपनाते हैं?" तो शिक्षक ने कहा, "ऐसे ही शब्दों को तोड़-तोड़कर समझाते हैं। ऐसे में बच्चों को तुरन्त समझ में आ जाता है।" मैंने आगे पूछा, "क्या पढ़ाने के लिए और विधियों का भी इस्तेमाल करते हैं आप?" शिक्षक का जवाब रहा, "अरे! ये बच्चे बहुत ही गरीब और बेकार हैं और इनकी भाषा दूसरी होने के कारण भी खूब दिक्कतें आती हैं।"

परीक्षा के दौरान यदि यही प्रश्न आता है तो बच्चे क्या लिखेंगे, जब वो ठीक से समझ ही नहीं पाए। और यदि अंक कम आते हैं तो उसके लिए कौन दोषी होगा? निश्चित तौर पर बच्चा ही दोषी होगा। और बच्चे का रिज़ल्ट बिगड़ने पर तो यह धारणा चली ही आ रही है कि इन बच्चों को तो कुछ आता ही नहीं है। फिर यह धारणा और पुख्ता हो जाएगी। और बच्चा शिक्षा से ही दरकिनार हो जाएगा।

2. दूसरी कहानी पारदी समुदाय के बच्चों से जुड़ी हुई है। पारदी समुदाय के बच्चों के पास जन्म प्रमाण पत्र नहीं हैं और इसके चलते उन्हें स्कूलों में प्रवेश मिलने में परेशानी आती है। पारदी समुदाय का होने से उन्हें स्कूल के साथ-साथ समाज से भी ज़लील और अमानवीय व्यवहार का शिकार होना पड़ता है। अपने ही सहपाठी उन्हें चोर के बच्चे कहकर चिढ़ाते हैं। बच्चे बताते हैं कि कहीं भी आसपास चोरी होने पर पुलिस उनके माँ-बाप को उठाकर ले जाती है, मार-पीट करती है, पूछताछ करती है और कहती है कि हम जाति से ही चोर हैं। ऐसे माहौल में बच्चे स्वयं को कितना प्रताड़ित और असुरक्षित महसूस करते होंगे।

3. तीसरे वाकये में एक मज़दूर का बेटा राज है जो सातवीं कक्षा तक तो अव्वल आता रहा, पर माँ की मौत के कारण उसे पढ़ाई छोड़नी पड़ी। दो छोटे भाई-बहनों की देखभाल के लिए वह कमाने निकल गया। कक्षा सातवीं तक बेहतर पढ़ाई करने वाला बच्चा, काम की दुनिया में खप रहा है। स्कूल जाते बच्चों को लालायित नज़रों से देख अपने को सांत्वना देता है कि छोटे भाई-बहन को ज़रूर पढ़ाएगा। राज स्कूल में वापस दाखिल होना चाहे तो स्कूल उसे कैसे मदद कर सकता है?

बहुबचपन और स्कूल

कामकाजी बच्चों की भी चाहत है कि वे पढ़-लिखकर 'बड़ा आदमी' बनें। इस चाहत में बच्चे अपने आपको स्कूल की दहलीज़ तक तो ले आते हैं, किन्तु परिस्थितिवश ज़्यादा देर टिक नहीं पाते।

जो बच्चे काम के साथ पढ़ाई करना चाहते हैं, क्या स्कूल का वातावरण उनके अनुकूल है? बिलकुल नहीं। उनके लिए अतिरिक्त व्यवस्था कर, उनके सपनों को भी स्कूल में जगह देने पर विचार ही नहीं किया गया। यही कारण है कि भारत में उच्च माध्यमिक स्तर आयु वर्ग में लगभग आधे बच्चे स्कूल नहीं जा पाते।

नया बाल श्रम अधिनियम बच्चों के कामकाज में लगने को तो एक तरह की वैधता देता है किन्तु श्रम और स्कूल के बीच सेतु का काम नहीं करता।

अगर हम चाहते हैं कि स्कूल एक ऐसी जगह बने जहाँ कामकाजी बच्चे भी सम्मानजनक तरीके से शिक्षा प्राप्त कर सकें तो शिक्षा व्यवस्था को लचीला बनाना होगा। हमें स्वीकार करना होगा कि सबका बचपन एक-सा नहीं होता है। सामान्य परिवारों के बच्चों के बचपन और श्रमिक बच्चों के बचपन में बहुत अन्तर है। स्कूलों में इन कामकाजी बच्चों के लिए अवसर और सुविधाएँ जब तक इस दृष्टि और समझ के साथ नहीं दी जाएँगी, तब तक यह सम्भव ही नहीं है। बहुबचपन समाज की एक सच्चाई है और इसे बहुत ही संवेदनशीलता, उदारता और व्यावहारिक समझ के साथ देखा जाना चाहिए। शिक्षा से इन बच्चों का जुड़ाव तभी सुगम और सम्भव होगा जब नीति निर्माताओं और शिक्षकों में बहुबचपन की स्पष्ट समझ बनी हो।

अंजना त्रिवेदी: अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, भोपाल में कार्यरत हैं।

सभी चित्र: अंकिता ठाकुर: राष्ट्रीय डिज़ाइन संस्थान, अहमदाबाद से ग्राफिक डिज़ाइन में स्नातकोत्तर की पढ़ाई कर रही हैं। बाल साहित्य और चित्रों में दिलचस्पी रखती हैं।